जम्मू एवं कश्मीर राज्य

बनाम

रोमेश चंद्र एवं अन्य

(27 नवंबर, 1996)

[के. रामास्वामी एवं जी.टी. नानावती, न्यायाधीश**]**

जम्मू और कश्मीर राज्य वन कार्य के राष्ट्रीयकरण अधिनियम, 1985
जम्मू और कश्मीर वन कार्य के राष्ट्रीयकरण अध्यादेश, 1986
जम्मू और कश्मीर वन कार्य के राष्ट्रीयकरण अधिनियम, 1987

आपराधिक अपीलीय अधिकारिता: आपराधिक अपील संख्या 2009/1996

दिनांक 23.4.1992 के जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 6/1992 में पारित निर्णय / आदेश के विरुद्ध।

अपीलकर्ता की ओर से: जगदेव सिंह मनहास।

उत्तरदाताओं की ओर से: डी.डी. ठाकुर, जी.ए. लोन, पी.एच. पारेख, एन.एन. भट्ट, सुश्री बीना माधवन, रंजीत कुमार, सुश्री अनु मोहला तथा सुश्री बिनु तमता।

न्यायालय का निम्नलिखित आदेश दिया गया:

विलंब क्षम्य किया गया।

अनुमति प्रदान की गई।

हमने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना।

यह विशेष अनुमति से दायर अपील जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 23 अप्रैल, 1992 को आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 6/92 में पारित आदेश से उत्पन्न हुई है। प्रतिवादी

संख्या 5 से 7, अर्थात् सुधीर कुमार, शरद कुमार और दविंदर कुमार को बिलावर डिवीजन के बनी रेंज के कम्पार्टमेंट संख्या 55-56 से लकड़ी निकालने के लिए पट्टा प्रदान किया गया था। यह विवादित नहीं है कि 28 अप्रैल, 1978 का पट्टा 31 दिसम्बर, 1986 तक प्रभावी रहने वाला था। प्रतिवादियों का कहना है कि कुछ अन्य उद्देश्यों के लिए इसे 31 दिसम्बर, 1987 तक बढ़ा दिया गया था। इस संबंध में कोई निष्कर्ष दर्ज करना आवश्यक नहीं है। इसे केवल कथन के रूप में ही नोट किया जा रहा है। सरकार ने 22 फरवरी, 1985 को एक आदेश पारित कर उपर्युक्त तीन ठेकेदारों को निर्देश दिया कि वे 3 सितम्बर, 1984 तक लकड़ी की निकासी का कार्य पूरा कर लें और उसके बाद बची हुई लकड़ी राज्य में निहित मानी जाएगी। स्वीकार किया जाता है कि यह केवल एक प्रशासनिक आदेश था। 24 सितम्बर, 1985 को जम्मू और कश्मीर राज्य वन कार्य के राष्ट्रीयकरण अधिनियम, 1985 अधिनियमित किया गया। इसके पश्चात, उपर्युक्त तिथि से सीमांकित वनों के भीतर पड़ी समस्त लकड़ी राज्य में निहित मानी जाएगी, चाहे उस तिथि पर कोई पट्टा या समझौता प्रभावी क्यों न हो।22 नवम्बर, 1984 के सरकारी आदेश को उच्च न्यायालय ने 12 मार्च, 1984 को रिट याचिका संख्या 48/1983 तथा सी.एम.पी. संख्या 2120/84 में पारित आदेश द्वारा स्थगित कर दिया था। जब प्रतिवादियों ने अधिनियम की वैधता को चुनौती देते हुए रिट याचिका संख्या 968/85 दायर की, तब उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:

"डी.एफ.ओ. बिलावर को आयुक्त नियुक्त किया जाता है, जो कम्पार्टमेंट संख्या 55-56 बसोहली, बनी रेंज, बिलावर डिवीजन के संबंध में नाले में लकड़ी छोड़ने के स्थलों पर जाएंगे और यह सुनिश्चित करेंगे कि इस आदेश के पारित होने के बाद, अर्थात् 13 नवम्बर 1985 के पश्चात, याचिकाकर्ता द्वारा नाले में कोई लकड़ी न छोड़ी जाए। तथापि, डी.एफ.ओ. बिलावर नाले में पहले से छोड़ी गई लकड़ी में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। उक्त लकड़ी को याचिकाकर्ता द्वारा अपने जोखिम और खर्च पर तथा पक्षकारों के अधिकारों को प्रभावित किए बिना, रावी नदी के पश्चिमी तट तक लाने की अनुमति दी जाती है, जो कि रावी नदी के पूर्वी तट पर स्थित शाहपुर कंडी के संग्रहण स्थल के सामने, जम्मू और कश्मीर राज्य के भीतर है। याचिकाकर्ता नाले में पहले से छोड़ी गई लकड़ी को, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, डी.एफ.ओ. बिलावर या उनके नामित अधिकारियों की निगरानी में रावी नदी के पश्चिमी तट तक लाएगा। याचिकाकर्ता को रावी नदी के पश्चिमी तट पर लाई गई लकड़ी पर कोई अधिकार

या ग्रहणाधिकार नहीं होगा। रिट याचिका के अंतिम निपटारे पर न्यायालय द्वारा आगे जो भी निर्णय लिया जाए, उसके अधीन रहते हुए, रावी नदी के पश्चिमी तट पर लाई गई लकड़ी को विधिवत रसीद के साथ वहीं भंडारित किया जाएगा और वह वन विभाग के प्रभार और नियंत्रण में रहेगी तथा याचिकाकर्ता उस संबंध में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा। दोनों पक्षों में से किसी के द्वारा, प्रतिपक्ष को सूचना देकर, इस आदेश में आगे परिवर्तन या संशोधन किया जा सकता है।"

इसके पश्चात, इस अधिनियम को उच्च न्यायालय द्वारा 13 दिसम्बर, 1985 को निरस्त कर दिया गया। जम्मू और कश्मीर वन कार्य के राष्ट्रीयकरण अध्यादेश, 1986 (अध्यादेश संख्या 5, वर्ष 1986) 31 जनवरी, 1986 को पारित किया गया, जिसे 24 सितम्बर, 1985 से पूर्वप्रभावी किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि यह अध्यादेश समाप्त हो गया और तत्पश्चात 16 दिसम्बर, 1986 को एक अन्य अध्यादेश जारी किया गया, जिसे बाद में जम्मू और कश्मीर वन कार्य के राष्ट्रीयकरण अधिनियम, 1987 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया, जो 21 अप्रैल, 1987 से प्रभावी हुआ तथा इसे 24 सितम्बर, 1985 से पूर्वप्रभावी प्रभाव दिया गया, क्योंकि 1986 के अध्यादेश संख्या 5 को भी 24 सितम्बर, 1985 से प्रभावी किया गया था।

अध्यादेश संख्या 5, 1986 की धारा 3(क) में यह उपबंध है कि "किसी भी विधि, नियम, साधन, समझौते या अनुबंध अथवा किसी न्यायालय या प्राधिकरण के किसी निर्णय, डिक्री या आदेश में इसके विपरीत कुछ भी निहित होने पर भी, इस अध्यादेश के प्रारंभ से कोई भी व्यक्ति राज्य के किसी सीमांकित वन में किसी वृक्ष को काटने, किसी लकड़ी को परिवर्तित करने या हटाने का कार्य नहीं करेगा।"धारा 9 दंड का प्रावधान करती है और यह घोषित करती है कि "जो कोई इस अध्यादेश के प्रावधानों का उल्लंघन करता है या उसके उल्लंघन में सहायता करता है, वह ऐसे कारावास से दंडनीय होगा जिसकी अवधि पाँच वर्ष तक हो सकती है, परन्तु तीन वर्ष से कम नहीं होगी। अपीलकर्ता ने एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई, जिसमें चार नामित अधिकारियों तथा प्रतिवादी पट्टाधारियों के विरुद्ध कुछ आरोप लगाए गए। जाँच पूरी होने के बाद पुलिस ने उपर्युक्त तीन पट्टाधारी-प्रतिवादियों सहित सात व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप-पत्र दायर किया, जिन पर कई अपराधों के आरोप लगाए गए, जिनमें सीमांकित वन से लकड़ी हटाने की अनुमति देने के लिए साजिश का आरोप भी शामिल था। इन विवरणों का यहाँ उल्लेख करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि इस चरण पर हम मामले का गुण-दोष के आधार पर निपटारा नहीं कर रहे हैं। विचारण न्यायालय ने सभी अभियुक्तों को आरोपों से मुक्त कर दिया। पुनरीक्षण

याचिका दायर किए जाने पर उच्च न्यायालय ने विवादित आदेश द्वारा उसी की पुष्टि कर दी।अतः यह अपील विशेष अनुमति द्वारा दायर की गई है।

श्री मनहास, जो राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता हैं, ने यह तर्क दिया कि विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्तों को आरोपों से मुक्त करना उचित नहीं था। यह उल्लेख करना आवश्यक है कि डी.एफ.ओ. खोजारिया तथा चौधरी गिरधारी लाल का निधन हो चुका है। अतः उनके विरुद्ध अभियोजन कार्यवाही समाप्त हो जाती है। प्रश्न यह है कि क्या प्रतिवादियों के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है? प्रतिवादी संख्या 5 से 7, जो पट्टाधारी हैं, की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री डी.डी. ठाकुर का कहना है कि उन्होंने कोई अपराध नहीं किया है और वे न तो 1986 के अध्यादेश संख्या 5 के प्रावधानों के अंतर्गत आते हैं और न ही 1987 के अधिनियम संख्या 7 के, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा निरस्त कर दिया गया था। अतः उनके विरुद्ध कोई मामला नहीं बनता। जैसा कि पहले कहा गया है, हम इस मामले का गुण-दोष के आधार पर विचार करने से इंकार करते हैं, क्योंकि उच्च न्यायालय को अधिनियम के सभी प्रासंगिक प्रावधानों, अपराधों तथा पक्षकारों के तर्कों पर आरोप-पत्र में किए गए कथनों को ध्यान में रखते हुए विचार करना चाहिए था। अब यह स्थापित विधि है कि आरोप-पत्र प्रथम दृष्टया ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत करता है जिससे आगे कार्यवाही करने योग्य अपराध बनता है। अतः न्यायालय को प्रासंगिक विधि तथा आरोप-पत्र में लगाए गए आरोपों का परीक्षण करना चाहिए और यह विचार करना चाहिए कि क्या अभियुक्तों के विरुद्ध विचारण हेतु आरोप निर्धारित करने के लिए कोई अपराध बनता है या नहीं। चूँकि उच्च न्यायालय ने ऐसा नहीं किया है, इसलिए हम उचित समझते हैं कि उच्च न्यायालय इस मामले पर पुनर्विचार करे और विधि के अनुसार उसका निपटारा करे। दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा उठाए गए सभी तर्क खुले रखे जाते हैं। उच्च न्यायालय में अधिवक्ताओं को इस विषय पर तर्क प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता होगी। तदनुसार अपील स्वीकार की जाती है और मामला निपटान के लिए उच्च न्यायालय को वापस भेजा जाता है। चूँकि यह एक पुराना मामला है, इसलिए हम उच्च न्यायालय से अनुरोध करते हैं कि इस आदेश की प्राप्ति की तिथि से तीन महीने के भीतर यथासंभव शीघ्र इसका निपटारा किया जाए।

टीएनए अपील स्वीकृत

यह अनुवाद पियूष आनंद, पैनल अनुवादक द्वारा किया गया है|